बरवै रामायण

सटीक

पण्डित वामदेव शर्मा

प्रकाशक

रामनरायन लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९२७

प्रथम संस्करण १०००]

[मूल्य =)

परिचय

भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी की अमर लेखनी द्वारा प्रवाहित साहित्य सागर का यह भी एक रत्न है। इसमें गोस्वामी जी ने बरवै छन्द में रामचरित का अति लालित्य सहित वर्णन किया है। यह भी सात काण्डों में विभक्त है। इसमें प्रथम गोस्वामी जी ने जगज्जननी श्रीजानकी जी के सौंदर्य का, तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के सौंदर्य का वर्णन किया है। इसके बाद रामचरित का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है। अन्त में उत्तर काण्ड में राम "नाम" की महिमा दर्शाया है। इस कलिकाल में भवसागर तरने के लिए सब साधनों से बढ़ कर राम नाम ही है। बिना उसके जीव अन्य किसी साधन द्वारा भवसागर तरना चाहे तो नहीं तर सकता। इसका पूर्णतया विवेचन किया गया है। अतः यह छोटी सी पुस्तिका भी भक्त जनों के लिए एक महान् साधन है।

अन्त में मैं अपने सहृदय पाठकों से साग्रह निवेदन करता हूँ कि जो कुछ त्रुटियाँ इसमें रह गयी हों उसकी सूचना देने की कृपा करेंगे। जिसमें दूसरे संस्करण में वह दूर कर दी जाय।

भाद्रशुक्ल अनन्तचौदस
संवत् १९८४

वामदेव शर्मा

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

बरवै रामायण

बालकाण्ड

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ १ ॥

एक सखी श्री जानकी जी के बालों में मोतियों की लड़ गुहने लगी। जब लड़ गुह चुकी तब उसने देखा कि श्री जानकी जी के केशों की श्यामता की झलक से मुक्तामणि मरकतमणि के समान दीख रहे हैं। इसे उसको भ्रम हो गया कि कहीं मैंने मरकतमणि तो नहीं गूंध दी। इस भ्रम को मिटाने के लिए जब उसने जानकी जी के गूँधे बालों को खोल, मोतियों की लड़ निकाल ली; फिर मोतियाँ चमकने लगीं। वही वह सखियों से कहती है—हे सखि! मुक्तामणि बालों में गूँथने पर मरकतमणि हो जाता है, पुनः हाथ में लेने पर वे मुक्तामणियाँ अपना चमक फैलाते हैं॥ १ ॥

सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग, सखि कोमल कनक कठोर ॥ २ ॥

हे सखि! सीता जी का शरीर सोने के रंग के समान है, यह सुख की खानि है और थोड़ा सुख देने वाला नहीं है, अर्थात् सोने से बहुत अधिक सुख देने वाला है। सीता जी का अंग कोमल है और सोना कठोर॥ २ ॥

सीयमुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाइ ॥ ३ ॥

सीता जी का मुख शरद्‌ऋतु के कमल के समान है, यह कैसे कहा जाय क्योंकि वह (कमल) रात में कुम्हिला जाता है और यह (सीता जी का मुँह) प्रतिदिन प्रफुल्लित रहता है। भाव यह कि कमल की एकाङ्गी प्रीति है, वह अपने प्रेमी सूर्य से प्रीति करता है, पर सूर्य उसको नहीं चाहता, दूसरे उसका शत्रु चन्द्रमा भी है, अतः वह

रात्रि में सम्पुटित हो जाता है, सीता जी और श्रीरामचन्द्र जी में परस्पर अपार दाम्पत्य प्रेम है, इसलिए सीता जी का मन सदा प्रसन्न रहता है ॥ ३ ॥

बड़े नयन, कटि भ्रुकुटी, भाल बिसाल ।
तुलसी मोहत मनहि मनोहर बाल ॥ ४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि सीता जी के नेत्र बड़े बड़े हैं, भौंहें टेढ़ी हैं, ललाट विशाल है और सुन्दर बालों को देख मन मोहित हो जाता है ॥ ४ ॥

चम्पक-हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ ॥ ५ ॥

सीता जी के अंग पर चम्पक का हार अधिक शोभा पाता है, चम्पक के फूलों का रंग और सीता जी के अङ्ग का रङ्ग गौर वर्ण है। इसलिये चम्पक का हार उस रङ्ग में मिल जाने से जान नहीं पड़ता कि वे हार पहने हैं, जब वह सीता जी के हृदय पर कुम्हिलाने लगता है तब जान पड़ता है कि वे चम्पक की हार पहने हुई हैं ॥ ५ ॥

सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार बेलि पहिरावौं चंपक होत ॥ ६ ॥

उपरोक्त बातें सुन सखियों से जानकी जी पूछती हैं कि क्या बातें करती हो। इसके उत्तर में सखियाँ कहती हैं—हे सीते! तुम्हारे अङ्ग के रङ्ग में मिलने से चम्पा का हार अधिक खिल उठता है, तुम्हें चम्पा का हार पहनाती हूँ तो तुम्हारे शरीर की आभा चम्पक लता सी मालूम होती है ॥ ६ ॥

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव ।
राम नीतिरत, काम कहा यह पाव ॥ ७ ॥

अब श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन करते हैं-श्रीरामचन्द्र जी साधु हैं, सुशील हैं, सुन्दर बुद्धि वाले हैं, पवित्र हैं, सीधे स्वभाव के हैं। वे न्याय में संलग्न (तत्पर) रहते हैं, यह कामदेव उनकी समता कैसे पा सकता है? (क्योंकि यह असाधु है, असन्मार्गी है, दुःशील है, पापी है) ॥ ७ ॥

कुंकुम तिलक भाल स्रुति कुंडल लोल ।
काकपच्छ मिलि, सखि कस लसत कपोल ॥ ८ ॥

हे सखि ! श्रीरामचन्द्र जी के ललाट पर केशर का तिलक और कानों में सुन्दर कुण्डल शोभायमान हैं। घुँघराले बाल कपोल पर लटक कर कैसे शोभित हो रहे हैं ॥ ८ ॥

भाल तिलक सर, सोहत भौंह कमान।
मुख अनुहरिया केवल चंद समान ॥ ९ ॥

ललाट पर तिलक बाण के समान और भौंह धनुष की तरह शोभायमान है। मुख चन्द्रमा के समान है, अर्थात् मुख को देख सखियाँ चकोर के समान एक टक देखने लगती हैं ॥ ९ ॥

तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसुकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि ॥ १० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी की तिरछी चितवन और मधुर मुसक्यान है (जो भक्तों के भय को हरने और आनन्द को देने वाले हैं) ऐसे कमल नयन प्रभु (श्रीरामचन्द्र जी) ऐसे हैं कैसे कहूँ। अर्थात् अनुपमेय भगवान की उपमा किस तरह ॥ १० ॥

कामरूप सम तुलसी राम सरूप।
को कबि समसरि करै परै भवकूप ॥ ११ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के स्वरूप की समता कामदेव के रूप से कर के कौन कवि भवसागर में पड़े। अर्थात् समता समान वस्तु की दी जाती है। कामदेव रूपवान् हैं पर उसमें दुर्गुण अनेक हैं और श्रीरामचन्द्र जी रूपवान् और गुणवान् दोनों ही हैं अतः कामदेव की समता देने योग्य नहीं है ॥ ११ ॥

चढ़त दसा यह उतरत जात निदान।
कहौं न कबहूँ करकस भौंह कमान ॥ १२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी की भौंह सदा चढ़ती दशा में रहती हैं और कामदेव का धनुष अन्त में उतर जाता है। वह धनुष कठोर है, और श्रीरामचन्द्र जी की भौंह कोमल है अतः भौंह को कभी धनुप के समान न कहूँगा। भाव यह कि श्रीरामचन्द्र जी की भौंह ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों वह उन्नत होती जाती और वह कृपा से भरी सज्जनों को सुख देने वाली है। परन्तु कामदेव का धनुप संयोग पाकर चढ़ता है, पर अन्त में

उतर जाता है और वह सज्जनों को दुःखदायी है, अतः वह श्रीरामचन्द्र जी की भौंह के उपमा योग्य नहीं है ॥ १२ ॥

नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन ।
निरखि निसाकर-नृप-मुख भये मलीन ॥ १३ ॥

श्रीसीताराम के रूप का वर्णन कर अब गोस्वामी जी सातों काण्डों का वर्णन संक्षिप्त में करते हैं । जब रामचन्द्र जी जनकपुर गये हैं उस समय के यज्ञमण्डप का बयान करते हैं । श्रीरामचन्द्र जी नित्य क्रिया कर बाल सूर्य रूप से जब मंच पर विराज गये तब उन्हें देख कर अन्धकार सम राजा के मुख मलिन हो गये । अर्थात् धनुष तोड़ने के लिए सब राजा अपने बल रूपी चन्द्रमा का प्रकाश करते रहे, पर धनुष भङ्ग रूपी अंधकार को दूर न कर सके । जब श्रीरामचन्द्र जी मंच पर विराजमान हुए तब उनके प्रताप को देख अन्य राजाओं का मुख सूख गया ॥ १३ ॥

कमठपीठ धनु सजनी कठिन अँदेस ।
तमकि ताहि ए तोरिहि कहब महेस ॥ १४ ॥

धनुष की कठोरता और श्रीरामचन्द्र जी की कोमलता देख कर सखियाँ कहती हैं–हे सखि ! शिव धनुष कछुए की पीठ से भी कठिन है, इसीसे यह सन्देह होता है कि उसे ये कोमल शरीर वाले कैसे तोड़ेंगे (इसलिए शिव जी का यह धनुष है) उन्हीं से हम लोग विनय करें, जिससे ये राजकुमार धनुष तोड़ने में समर्थ हों ॥ १४ ॥

नृप निरास भये निरखत नगर उदास ।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥ १५ ॥

जब सब राजा धनुष उठा कर थक गये, किसी के उठावा न उठा, तब राजा जनक निरास हो गये और उनको निरास देख नगर निवासी उदास हो गये । उसी समय हरि श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ कर सब का दुःख दूर किया । अर्थात् धनुष टूटने से राजा जनक, नगर निवासी सभी प्रसन्न हुए ॥ १५ ॥

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि ।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥ १६ ॥

जब राजा दशरथ पुत्र और पुत्रवधू सहित अयोध्या आ गये हैं उस समय अयोध्या कि कुमारियाँ सीता आदि से कहती हैं–हे नई दुलहिनो ! घूँघट से मुख क्यों छिपाती

हो, तुम्हारे मुख के समान चन्द्रमा आकाश में शोभायमान है। भाव यह कि जैसे चन्द्रमा सब को समान रूप से दर्शन देता है, वैसेही तुम भी हम सब को अपना दर्शन देकर सुखी करो ॥ १६ ॥

गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सियकै छाँह ॥ १७ ॥

एक सखी मजाक में कहती है-हे रामचन्द्र जी! अपने मन में अपने रूप का घमंड न करो। अपनी मूर्त्ति को देखो और सीता जी की छाया को देखो। अर्थात् तुम संसार में सब से सुन्दर हो पर सीता तुम से भी सुन्दरी हैं ॥ १७ ॥

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनीदे नैन ॥ १८ ॥

हे सखि! अब सीता और श्रीराम के नेत्र नींद के वश हुए हैं। इन्हें सोने दे। ऐसा मधुर वचन हँस कर कह के किसी काम का बहाना करके वह चली गयी ॥ १८ ॥

सींक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन।
मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन ॥ १९ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्र जी ने एक दिन सींक का धनुष सीखने के लिए संकुचित होकर लिया। (संकोच के वश इसलिये हुए कि मैंने शिव धनुष तोड़ा, परशुराम का धनुष चढ़ाया, मुझे लोग सींक का धनुष लेते देख क्या कहेंगे।) यह देख महाराज दशरथ ने प्रसन्न होकर एक धनुही उन्हें दी। (महाराज रामचन्द्र को अभी निरा बालक ही समझते हैं, उनको सींक का धनुष लेते देख यह समझे कि अब इनमें क्षात्र बीज अङ्कुरित हुआ इसलिये प्रसन्न होकर छोटी धनुही दी) ॥ १९ ॥

अयोध्याकाण्ड

सात दिवस भये साजत सकल बनाउ।
का पूछहु सुठि राउर सरल सुभाउ॥ २०॥

जब श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक का हाल मन्थरा ने सुना तब वह कैकेयी के पास जा कर कहती है। रामचन्द्र के युवराज पद पर अभिषिक्त करने की तैयारी होते आज सात दिन हो गये। तुम क्या पूछती हो। तुम्हारा सीधा स्वभाव है। इसमें मन्थरा कैकेयी की सरलता और महाराज दशरथ की कपटता दर्शा रही है॥ २०॥

राजभवन सुख बिलसत सिय सँग राम।
बिपिन चले तजि राज, सुबिधि बड़ बाम॥ २१॥

राजमहल में श्रीरामचन्द्र जी सीता जी के साथ सुख भोग कर रहे थे, (पर कैकेयी के वरदान के कारण) वे राजत्याग कर विधाता की वामता से वन को चल दिये हैं॥ २१॥

कोउ कह नरनारायन, हरि हर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ॥ २२॥

श्रीराम लक्ष्मण के अपूर्व सौन्दर्य और तेज को देख कर मार्ग वासियों में से कोई कहता है कि ये नर नारायण हैं। कोई कहता है कि विष्णु और शिव जी हैं। कोई कहता है कि वसन्त और कामदेव वन में विहार करते हैं॥ २२॥

तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान।
राम लषन के रूप न देखेउ आन॥ २३॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी के विषय में निर्णय करने में मार्ग वासियों की बुद्धि थकित हो गयी (वे निश्चय न कर सके कि वे कौन हैं।) श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण के समान रूपवान् अन्य कोई नहीं दिखाई देता॥ २३॥

तुलसी जनि पग धरहु गंग महँ साँच।
निगानाँग करि नितहिं नचाइहि नाँच॥ २४॥

जब श्रीरामचन्द्र जी वनवास के समय गङ्गातट पर गये तब केवट किनारे पर नाव ले आया श्रीरामचन्द्र जी ने चाहा कि थोड़ा ही तो जल है नाव पर चढ़ जाऊँ। यह देख केवट ने सोचा कि यदि भगवान् जल में पैर रखेंगे तो चरणरज धूल जायगी। अतः चरणामृत नहीं मिलेगा। उसीको लक्ष्य करके तुलसीदास जी कहते हैं केवट कहता है कि गङ्गा में मैं सत्य कहता हूँ नाव पर पैर न रखिये क्योंकि आप पैर रखेंगे तो मेरी नौका भी कहीं स्त्री न हो जाय। यदि ऐसा हो गया तो मेरी स्त्री यह देख कर कि इसने एक और स्त्री (रखली) मुझे नित्य ही निगानाँग, परेशान कर नाच नचावेगी ॥ २४ ॥

सजल कठौता कर गहि कहत निषाद।
चढ़हु नाव पग धोइ करहु जनि वाद ॥ २५ ॥

हाथ में जल भरा कठौता ले कर के निषाद कहता है–हे महाराज! पैर धोकर नाव पर चढ़िये। इसमें वाद विवाद न कीजिये (क्योंकि मैं पहले ही कारण बता चुका हूँ कि कहीं मेरी नाव स्त्री न हो जाय) ॥ २५ ॥

कमल कंटकित सजनी, कोमल पाइ।
निसि मलीन, यह प्रफुलित नित दरसाइ ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्र जी गङ्गा पार कर जब आगे बढ़े तो मार्ग की स्त्रियाँ उनकी छवि देख कर कहती हैं कि ये कमल समान चरण वाले कठिन मार्ग कैसे चलते हैं। यह सुन दूसरी स्त्री कहती है कि हे सखि! (तेरा उपमा ठीक नहीं क्योंकि) कमल के नाल में काँटे होते हैं पर इनके पैर कोमल हैं। रात्रि में कमल संकुचित हो जाता है। पर ये सदा प्रसन्न ही दिखाई पड़ते हैं ॥ २६ ॥

वाल्मीकिवचन

द्वै भुज करि हरि रघुवर सुंदर वेष।
एक जीभ कर लछिमन दूसर सेष ॥ २७ ॥

श्रीरामचन्द्र जी वाल्मीकि मुनि के आश्रम में गये और उनसे अपने रहने के लिए स्थान पूछा। उसी के उत्तर में मुनि कहते हैं, आप दो भुजा वाले हरि हैं, (भूभार उतारने के लिए यह राजकुमार का) सुन्दर वेश धारण किये हैं। एक जीभ वाले लक्ष्मण जी सहस्र जीभ धारी शेषनाग हैं। अर्थात् आप विष्णु के अवतार और लक्ष्मण जी शेष के अवतार हैं। आप मुझे बड़ाई प्रदान करने के लिए क्यों न अपने रहने का स्थान पूछेंगे ॥ २७ ॥

अरण्यकाण्ड

वेद-नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास ।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास ॥ २८ ॥

पञ्चवटी में सूर्पनखा ने जब श्रीरामचन्द्र जी को देखा तब मोहित हो गयी और वह श्रीरामचन्द्र जी के पास गयी पर उन्होंने उसे लक्ष्मण के पास भेजा और लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र जी के पास। इससे वह क्रुद्ध हो गयी। उस समय श्रीरामचन्द्र जी ने वेद (श्रुति को भी कहते हैं श्रुति कान को भी, नाक आकाश को भी और नाक नासिका को भी अतः) अँगुरी को खण्ड कर, नाक कान काटने का इशारा कर श्रीरामचन्द्र जी ने सूर्पनखा को लक्ष्मण जी के पास भेजा ॥ २८ ॥

हेमलता सिय मूरति मृदु मुसकाइ ।
हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि दिखाइ ॥ २९ ॥

सीता जी का रूप सोने की लता के समान दीप्तिमान है, उन्होंने मुसक्या कर श्रीरामचन्द्र जी को कपट रूपधारी स्वर्ण मृग मारीच को दिखा दिया (श्रीरामचन्द्र जी ने जानकी जी के मन की बात जान कर की इस मृग को पालना चाहती हैं। वे उसे पकड़ने के लिए तैयार हुए) ॥ २९ ॥

जटा मुकुट कर-सर धनु, संग मरीच ।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ॥ ३० ॥

जटा का मुकुट और हाथ में धनुषबाण लिए श्रीरामचन्द्र जी मारीच के पीछे पीछे उसे कनखियों से देखते हुए चले जाते हैं। उनकी वह चितवन (गोस्वामी जी के) नेत्रों में बस रही है। भाव यह कि उस समय के भगवान् का रूप गोस्वामी जी के नेत्रों में वास कर रहा है ॥ ३० ॥

रामवाक्य

कनकसलाक, कला ससि, दीपसिखाउ ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहिं बताउ ॥ ३१ ॥

मृग मारीच को मार कर लक्ष्मण जी सहित श्रीरामचन्द्र जी आश्रम को लौट आये। वहाँ श्री सीता जी को न देख कर लक्ष्मण जी से पूछते हैं। सोने के सलाका के समान अर्थात् सर्वाङ्ग सुन्दर गौरवर्ण, चन्द्रमा के कला के समान अर्थात् चन्द्रमा के अमृत कला सम पावन यश प्रकाशक, जगत् वन्दनीय, दीप शिखा अर्थात् दोनों कुल पितृ और पति कुल के यश को प्रकाश करने वाली, तारा नक्षत्र के समान अर्थात् जैसे रोहिणी चन्द्रमा को प्रिय है, वैसी ही मेरी प्यारी सीता कहाँ हैं? हे लक्ष्मण! मुझे बताओ॥ ३१॥

सीय बरन सम केतकि अति हिय हारि।
किहेसि भँवर कर हरवा हृदय-विदारि॥ ३२॥

अपने रूप के गर्व में आकर केतकी ने सीता जी के रूप से अपनी समता की। पर अपने को सीता जी से तुच्छ समझ वह हृदय से हार गयी। सीता जी के सादृय से उसके हृदय पर इतना आघात पहुँचा कि उसका हृदय फट गया, पर अपने भाव को छिपाने के लिए उसने भौंरे का हार पहन लिया यहाँ केतकी के कलियों का खिलना ही हृदय का विदीर्ण होना है। पुष्परस लेने के लिए भ्रमर का आकर बैठ जाना ही हार धारण करना है॥ ३२॥

सीतलता ससि की रहि सब जग छाई।
अगिनि ताप है तम कह संचरत आइ॥ ३३॥

श्रीरामचन्द्र जी सीता के वियोग में अपना विरह वर्णन करते हैं। चन्द्रमा की शीतलता सारे संसार में छायी हुई है अर्थात् चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों द्वारा सारे संसार को सुख दे रहा है, पर वह मुझे अग्नि के समान तप्त हो कर सीता के वियोग में सता रहा है॥ ३३॥

किष्किन्धाकाण्ड

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम ।
इनतें भइ सित कीरति अति अभिराम ॥ ३४ ॥

हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी का परिचय सुग्रीव से देते हैं। ये श्याम शरीर वाले श्रीरामचन्द्र जी हैं और गौरवर्ण वाले श्रीलक्ष्मण जी हैं। इनसे कीर्त्ति निर्मल हुई है अर्थात् इनकी निर्मल कीर्त्ति के श्रवण कीर्त्तन सब को सुख देने वाला है ॥ ३४ ॥

कुजन-पाल गुन-वर्जित, अकुल अनाथ ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुन गाथ ॥ ३५ ॥

सुग्रीव श्रीरामचन्द्र जी से कहते हैं, हे कृपानिधि श्रीरामचन्द्र जी! आपके गुण गाथाओं का मैं कैसे बखान करूँ। आप गुणहीन, कुलहीन, अनाथ, दुर्जन (वानर) के पालने वाले हैं ॥ ३५ ॥

सुन्दरकाण्ड

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ॥ ३६ ॥

सीता जी अपनी विरह दशा का वर्णन करती हैं। विरह अग्नि जब हृदय से ऊपर आ कर अधिका जाती है, शरीर को भस्म करना चाहती है, तो ये मेरे वैरी नेत्र आँसुओं की धारा से बुझा देते हैं। भाव यह कि नेत्र राम दर्शन के इच्छुक हैं, शरीर को जब विरह अग्नि जलाना चाहती है तब अपने स्वार्थ में बाँधा देख नेत्र अश्रुधारा द्वारा उस अग्नि को बुझा देते हैं। नेत्र वैरी इसलिए हैं कि जब विरह अग्नि शरीर को भस्म करना चाहती है तब ये बुझा देते हैं ॥ ३६ ॥

डहकु न है उजिअरिया निसि नहिं घाम ।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम ॥ ३७ ॥

विरह में चन्द्रमा सूर्य के समान और चाँदनी धूप के समान जान पड़ती है, पर रात में सूर्य उदय नहीं होता, अतः यह घाम नहीं है, यह चन्द्रमा है, उसी की तू चाँदनी है,

तू मुझे बहका मत। विना श्रीरामचन्द्र जी के मुझे तो संसार ही जलता हुआ दिखाई पड़ता है। इसमें यह चन्द्रकिरण मुझे बड़ी ही दुःखदायी है॥ ३७॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ॥ ३८॥

हे कपि! अब जीने की कोई आशा नहीं है क्योंकि कनगुरियाँ की अँगुठी कङ्कण हो गयी। अर्थात् श्रीरामचन्द्र जी के विरह में शरीर ऐसा दुर्बल हो गया है कि छोटी अँगुली में पहने जाने वाली अँगूठी हाथ में कङ्कना पहनने के स्थान में पहनने योग्य हो गयी है॥ ३८॥

राम सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार।
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार॥ ३९॥

श्रीरामचन्द्र जी के यश का प्रचार चारों युगों में होता है, अर्थात् राम के स्मरण से चारों युग में जीव बंधन से मुक्त हो जाते हैं। पर राक्षसों का अत्याचार देख कर संसार में अंधियारा ही मालूम पड़ता है अर्थात् राम यश राक्षसों के अत्याचार रूपी अंधकार में छिप गया है॥ ३९॥

(कपिवाक्य)

सिय बियोग दुख केहि विधि कहउँ बखानि।
फूलबान ते मनसिज बेधत आनि॥ ४०॥

लङ्का से सीता का समाचार ले आ कर हनुमान जी श्रीरामचन्द्र जी से कहते हैं, सीता जी के वियोग का दुःख कैसे वर्णन करूँ, वह वर्णन नहीं हो सकता। कामदेव फूल के बाण से उन्हें वेध रहा है। अर्थात् आपके विरह वियोग में वे बहुत दुःख पा रही हैं॥ ४०॥

सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहि जोरि करि बिनवति कुलगुरु जानि॥ ४१॥

जब शरद् की चाँदनी चारों ओर फैलती है, तब वह सीता जी को ऐसी ताप पहुँचाती है कि, चन्द्रमा को कुलगुरु सूर्यदेव जान कर वे विनती करती हैं कि, अपना ताप हरो॥ ४१॥

लंकाकाण्ड

विविध वाहिनी विलसति सहित अनंत ।
जलधि सरिस को कहै राम भगवंत ॥ ४२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी लङ्का के लिए प्रस्थान किये उसी समय की सेना का वर्णन है, लक्ष्मण जी सहित ऋछ वानरों की अनेक तरह की सेना शोभा पा रही है, भगवान् श्रीरामचन्द्र जी और सेना समुद्र है ऐसा कौन कहै, अर्थात् सेना समुद्र है, उसमें शेष सहित भगवान् हैं, यह उपमा श्रीरामचन्द्र जी को देने योग्य नहीं है। क्योंकि समुद्र प्रलयकाल में उमड़ता है, संसार का नाश करता है, पर यह सेना राक्षसों को मार संसार को सुखी करेगी। अतः यह उपमा देने योग्य नहीं है ॥ ४२ ॥

उत्तरकाण्ड

चित्रकूट पय तीर सो सुर-तरुवास ।
लखन राम सिय सुमिरहु तुलसीदास ॥ ४३ ॥

गोस्वामी जी अपने को सम्बोधन कर कहते हैं—हे तुलसीदास ! चित्रकूट में पयस्विनी (मन्दाकिनी) के तट पर वटवृक्ष के नीचे वास कर और श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता जी का स्मरण करो ॥ ४३ ॥

पय नहाइ फल खाहु, परिहरिय आस ।
सीयराम-पद सुमिरहु तुलसीदास ॥ ४४ ॥

हे तुलसीदास ! पयस्विनी में स्नान कर सब पापों को धो डालो, फल खा कर इन्द्रियों का दमन करो और सारी विषय वासना को त्याग दो। केवल सीता राम के चरणों का स्मरण करो ॥ ४४ ॥

स्वारथ परमारथ हित एक उपाय ।
सीयराम-पद तुलसी प्रेम बढ़ाय ॥ ४५ ॥

स्वार्थ (अर्थ, धर्म, कामादि की प्राप्ति) परमार्थ (मुक्ति) इनके साधन का एक यही उपाय है कि, हे तुलसी ! श्री सीता राम में प्रेम बढ़ाओ। भाव यह कि, सीताराम में प्रेम बढ़ाने से ही स्वार्थ परमार्थ की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ ४५ ॥

काल कराल बिलोकहु होइ सचेत ।
राम नाम जपु तुलसी प्रीति समेत ॥ ४६ ॥

सावधान मन से काल की भयंकरता देखो। इस भयंकर कलिकाल में कोई भी साधन पूरा नहीं पड़ता। अतः हे तुलसी ! राम नाम प्रेम सहित जपो। इसी से सब बन जायगा ॥ ४६ ॥

संकट सोचबिमोचन, मंगल गेह ।
तुलसी रामनाम पर करिय सनेह ॥ ४७ ॥

हे तुलसी ! सब दुःख और शोक को छुड़ाने वाले, मंगल के धाम रामनाम का प्रेम सहित स्मरण करो। इससे सारे दुःख दूर हो जायँगे। आनन्द मंगल प्राप्त होगा ॥ ४७ ॥

कलि नहिं ज्ञान, बिराग, न जोग, समाधि ।
रामनाम जपु तुलसी नित निरुपाधि ॥ ४८ ॥

कलियुग में ज्ञान (आत्मस्वरूप की पहचान) विराग (संसार सुख से लेकर स्वर्ग सुख को त्याग) योग (यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, धारण, ध्यान आदि) समाधि (ईश्वर में लय रहना) ये कोई भी नहीं हो सकते। अतः हे तुलसीदास ! विघ्नबाधा रहित राम नाम को सदा जपा करो ॥ ४८ ॥

राम नाम दुइ आखर हिय हितु जानु ।
राम लषन सम तुलसी सिखब न आनु ॥ ४९ ॥

श्रीरामनाम के दो अक्षरों को हृदय से हितकारी जान। हे तुलसी ! राम के र को तो राम का रूप और अ को जानकी जी का रूप और म को लक्ष्मण का रूप जानो अतः 'रा' 'म' को राम जानकी और लक्ष्मण जान कर हृदय में रखो और दूसरी सीख को न मानो ॥ ४९ ॥

माय बाप गुरु स्वामि राम कर नाम ।
तुलसी जेहि न सोहाइ ताहि बिधि बाम ॥ ५० ॥

श्रीरामचन्द्र जी का नाम, माता पिता के समान लालन पालन करने वाला है, गुरु के समान सदुपदेश देने वाला है तथा स्वामी के समान सदा रक्षा करने वाला है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिसको रामनाम अच्छा न लगे, जिसकी रुचि रामनाम में नहीं है, उसके लिए दैव ही टेढ़ा है, अर्थात् वह अभागा है, उसका किसी साधन से कल्याण नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

रामनाम जपु तुलसी होइ बिसोक।
लोक सकल कल्यान, नीक परलोक ॥ ५१ ॥

हे तुलसी ! सब चिन्ताओं से रहित होकर रामनाम जप। इससे संसार में सब आनन्द मंगल होगा और परलोक में भी भला होगा ॥ ५१ ॥

तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास।
सब ते अधिक राम जपु तुलसीदास ॥ ५२ ॥

तप, तीर्थ, यज्ञ, दान, नेम, उपवास ये सब करने में अनेक कठिनाइयाँ और विघ्न बाधाएँ हैं, पर राम नाम कहने में न तो परिश्रम ही है न कोई विघ्न बाधाएँ हैं। अतः तप आदि से अधिक जान कर हे तुलसी ! राम नाम जप। भाव यह कि राम नाम स्वाभाविक ही कल्याणकारी है ॥ ५२ ॥

महिमा रामनाम के जान महेस।
देत परम पद कासी करि उपदेस ॥ ५३ ॥

रामनाम की महिमा शिव जी जानते हैं, उसी रामनाम का उपदेश देकर उत्तम, मध्यम, अधम कोई जीव काशी में मरे उसे परम पद (मोक्ष) देते हैं ॥ ५३ ॥

जान आदि-कवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत कोल ते भये ऋषि राउ ॥ ५४ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि, नाम का प्रभाव आदि कवि वाल्मीकि जी जानते हैं*, जो उलटा " मरा मरा " जप कर कोल से श्रेष्ठ ऋषि हो गये ॥ ५४ ॥

---

* वाल्मीकि का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था पर कुसंग में पड़ कर वे चरित्रहीन हो गये। शूद्रा कन्या से इन्होंने अपना व्याह कर लिया। कुटुम्ब पालने के लिए ये यात्रियों को लूटा मारा करते थे। एक बार इन्हें कई एक ऋषि मिल गये जिन्होंने इन्हें इस पाप कर्म से विमुख होने और राम नाम जपने का उपदेश दिया। पर राम नाम के बजाय वे " मरा मरा " जपने लगे। वे उलटा ही रामनाम के प्रभाव से इतने बड़े महर्षि हो गये।

कलसजोनि जिय जानेउ नामप्रतापु।
कौतुक सागर सोखेउ करि जिय जापु॥ ५५॥

घटयोनि अर्थात् घड़े से उत्पन्न अगस्त्य जी राम नाम का प्रताप जानते हैं*, कि हृदय में रामनाम जप कर कौतुक ही में समुद्र सोख लिया॥ ५५॥

तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि।
वेद पुरान पुकारत कहत पुरारि॥ ५६॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि राम का स्मरण करने से चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) सहज ही में मिल जाते हैं, (इसकी साक्षी में) वेद पुराण पुकार रहे हैं और शिव जी भी कहते हैं॥ ५६॥

रामनाम पर तुलसी नेह निबाहु।
एहि ते अधिक, न एहि सम जीवनलाहु॥ ५७॥

हे तुलसी! राम नाम ही से नेह निवाह। अर्थात् आदि से अन्त तक एक रस राम नाम में प्रेम निर्वाह करने से बढ़ कर कोई साधन नहीं है। इसके समान जीवन धारण करने का दूसरा लाभ भी नहीं है॥ ५७॥

दोष-दुरित-दुख-दारिद-दाहक नाम।
सकल सुमंगलदायक तुलसी राम॥ ५८॥

दोष (जीव हिंसादि) तथा दुरित (चोरी, ठगी, परनिंदा, परस्त्रीगमन आदि यावत् पाप कर्म), दुःख, (हानि, वियोग, रोग व्याधि, राजदण्ड, शत्रु संकट आदि), दारिद (अन्न, वस्त्र आदि की अप्राप्ति), इन सब को रामनाम भस्म करने वाला है, अर्थात् जैसे अग्नि ईंधन को जला देती है, वैसे ही रामनाम जपने से सब पाप, दुःख दारिद्रय दूर करने वाले रामनाम को जप॥ ५८॥

केहि गिनती महँ गिनती जस बनघास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥ ५९॥

---

* अगस्त्य ऋषि एक बार समुद्रतट पर सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। समुद्र इनके पूजन की सामग्री बहा ले गया। समुद्र की यह उद्दण्डता देख इनको बड़ा क्रोध आया। इन्होंने तत्काल ही रामनाम का स्मरण कर समुद्र को तीन आचमन में सोख लिया। अन्त में देवताओं के प्रार्थना करने से पेशाब द्वारा इन्होंने समुद्र भर दिया। कहते हैं तभी से समुद्र का जल खारी हो गया।

तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरी गिनती किस गिनती में थी जैसे वन की घास। अर्थात् गाँव के पास की घास तो पशु आदि चर लेते हैं, वह काम में आ जाती है, पर वन की घास स्वयं उत्पन्न होकर मुर्झा जाती है, वह किसी के काम नहीं आती है, वन की घास के ही समान मैं तुच्छ था, वही तुलसीदास राम के जपने से तुलसी वृक्ष के समान लोकपावन हो गया ॥ ५९ ॥

आगम निगम पुरान कहत करि लीक।
तुलसी रामनाम कर सुमिरन नीक ॥ ६० ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि, रामनाम का सुमिरन करने से सब जीवों का भला होता है। इस बात को शास्त्र स्मृति और वेद रेख खींच कर कहते हैं ॥ ६० ॥

सुमिरहु रामनाम कर, सेवहु साधु।
तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु ॥ ६१ ॥

रामनाम का स्मरण कर, साधुओं की सेवा कर, हे तुलसी! अथाह भव सागर के पार हो जा। अर्थात् साधुओं की सेवा से उनकी रीति रहस्य से अपना आचरण शुद्ध हो जायगा और रामनाम जपने से सब पाप दूर हो जायँगे। अतः ऐसे आचरण से मनुष्य जन्ममरण के बंधन से छूट जायगा ॥ ६१ ॥

कामधेनु हरिनाम, कामतरु राम।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम ॥ ६२ ॥

श्रीरामचन्द्र जी का नाम कामधेनु है, अर्थात् जंगम (चलने फिरने वाला) है, सर्वकाल सब देश सर्वत्र सब को फलदायक है। भाव यह कि जिस समय, जहाँ जो नाम लेगा उसी समय, वहीं उसके सब कार्य सिद्ध होंगे। पर राम कल्पतरु हैं, अर्थात् राम का रूप कल्पवृक्ष के समान स्थावर है, वह केवल देवलोक ही में प्राप्त हो सकता है, और उस रूप की प्राप्ति अन्तरात्मा के शुद्ध होने पर ही हो सकती है, उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं है, और श्रीरामनाम की प्राप्ति सुलभ है। अतः हे तुलसी! प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्र जी के नाम का स्मरण करो जो चारों फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष को देने वाला है ॥६२॥

तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय ॥ ६३ ॥

हे तुलसी ! कहते और सुनते सभी हैं, पर समझते विरला ही कोई है, अर्थात् राम नाम के विषय में सभी कहते और सुनते हैं, पर समझने वाले विरला ही कोई एक जन हैं। बड़े भाग्य ही से रामचन्द्र से प्रेम होता है ॥ ६३ ॥

एकहि एक सिखावत जपत न आप ।
तुलसी राम प्रेम कर बाधक पाप ॥ ६४ ॥

एक दूसरे को सिखाता है (कि रामनाम जप) पर स्वयं नहीं जपता, तुलसीदास जी कहते हैं कि, इसका बाधक पाप ही है, आलस्य, दुर्जन संग, कामादि वार्ता के वशवर्ती होने से लोग रामनाम नहीं जप पाते ॥ ६४ ॥

मरत कहत सब सब कहँ सुमिरहु राम ।
तुलसी अब नहीं जपत समुझि परिनाम ॥ ६५ ॥

मरते समय सब लोग सब को कहते हैं–" रामनाम सुमिरन करो । " अन्तकाल में यही सहायक है। इस बात को जानते हुए भी पहले ही से लोग राम नाम को नहीं स्मरण करते जिससे अन्त भला हो ॥ ६५ ॥

तुलसी रामनाम जपु आलस छाँडु ।
रामबिमुख कलिकाल को भयो न भाँडु ॥ ६६ ॥

हे तुलसीदास ! आलस्य छोड़ कर रामनाम जप। इस भयंकर कलिकाल में राम विमुख होने से कौन बहुरुपिया न हुआ। भाव यह कि लोग जप, तप, साधन, नियम, उपासनादि अनेक साधन करते हैं, पर रामनाम में प्रेम न होने से कलिकाल में एक भी नहीं होने पाता सब नष्ट हो जाता है, अतः भाँड के समान लोग वेश ही बनाए रह जाते हैं। उससे लाभ कुछ नहीं होता ॥ ६६ ॥

तुलसी रामनाम सम मित्र न आन ।
जो पहुँचाव राम पुर तनु अवसान ॥ ६७ ॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि रामनाम के समान दूसरा कोई मित्र नहीं हैं क्योंकि अन्य जितने मित्र आदि हैं, सभी यहीं रह जाते हैं, मरने पर कोई साथ नहीं देता, पर रामनाम जीव को संसार-सागर से पार कर श्रीरामचन्द्र जी के पुर वैकुण्ठ में पहुँचाता है ॥ ६७ ॥

राम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु ।
जनम जनम रघुनंदन तुलसीदेहु ॥ ६८ ॥

राम का भरोसा, राम का बल और रामनाम ही में प्रेम हे रामचन्द्र जी ! तुलसीदास को जन्मजन्मान्तर में दो ॥ ६८ ॥

जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहि देहु ।
तहँ तहँ राम निबाहिब नाथ सनेहु ॥ ६९ ॥

हे रामचन्द्र जी ! जहाँ जहाँ तुलसी को जन्म देना वहीं वहीं रामनाम से प्रेम निबाहना । अर्थात् चाहें मेरा जन्म जिस योनि जिस लोक में हो पर मेरा प्रेम रामनाम में बना रहे । यही वर दान दो ॥ ६९ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.